© INNOVATIVE RESEARCH THOUGHTS | Refereed | Peer Reviewed | Indexed
ISSN : 2454 – 308X | Volume : 04 , Issue : 06 | July - September 2018

वर्तमान समय में यम–नियम की उपादेयता

डा॰ विरेन्द्र कुमार, सुशील कुमार

सहायक प्राध्यापक, योग विज्ञान, चौ. रणबीर सिंह विश्वविद्यालय, जीन्द।
एम॰ए॰ योग द्वितीय वर्ष, चौ. रणबीर सिंह विश्वविद्यालय, जीन्द।

आत्म–दर्शन, ईश्वर दर्शन, आत्मानुभूति व परमात्मानुभूति आदि मानव जीवन की परम उपलब्धियाँ हैं। मनुष्य जीवन में आत्मज्ञान व ब्रह्मज्ञान के माध्यम से इन परम उपलब्धियों को पा लेना ही मनुष्य जीवन का परम लक्ष्य है, परंतु मनुष्य जीवन आज नकारात्मकता की तरफ झुकता जा रहा है। मनुष्य जीवन अनेक कष्टों व क्लेशों से मुक्ति नहीं मिल पाती, तब तक सौंदर्य व आनंद से भरी इस दुनिया में रहते हुए भी व्यक्ति सौंदर्य व आनन्द से अछूता रहता है। अतः आज के समय में नैतिक मूल्यों का ह्रास होता जा रहा है। जीवन में कठिनाइयों और संघर्षों का आना अनिवार्य है। अपना अस्तित्व स्थिर रखने और सम्मानपूर्वक जीवन बिताने के लिए दृढ़ता और सहिष्णुता की आवश्यकता है। इसलिए वर्तमान समय में आई समस्याओं व क्लेशों का नाश करने के लिए 'अष्टांग योग' के महत्वपूर्ण अंश 'यम–नियम' का पालन करना अनिवार्य है। अतः 'यम–नियम' का वर्णन निम्नवत् हैं :–

यम :–

यम शब्द यमु ऊपर में धातु से उत्पन्न होता है। जिसका अर्थ – जिनके द्वारा इन्द्रियों एवं मन को अशुभ कर्मों से हटाकर आत्मकेन्द्रित करना ही यम है। आचार्य रजनीश ने यम का अर्थ – अनुशासन से लिया है। इसका मानव जीवन के लगभग दैनिक क्रियाओं पर भी प्रभाव है।[1]

नियम :–

जीवन का कोई भी कार्य में सफलता पाने के लिए नियम का होना अति आवश्यक है। नियम तो मानव जीवन में प्रत्यक्ष संबंध रखता है।

यम का सेवन नित्य करें। यदि व्यक्ति यम का पालन नहीं करता तो वह नियम का पालन भी उचित ढंग से नहीं कर सकता इसलिए यम सेवन पूर्वक नियम सेवन नित्या किया करें।[2]

यम :–

"अहिंसासात्यास्तेय ब्रह्मचर्यापरिग्रहा यमाः"

1. अहिंसा 2. सत्य 3. अस्तेय
4. ब्रह्मचर्य 5. अपरिग्रह

ये पांच यम बताए गए है, जिनके द्वारा योग साधना आरंभ होती है।

1. अहिंसा :–

अहिंसा का अर्थ हे – प्रेम की धारा प्रवाहित होना है।

महर्षि व्यास भी कहते हैं कि – सब प्रकार से सब कालों में समस्त भूतों को पीड़ा न देना अहिंसा है।

आचार्य श्रीराम जी कहते हैं कि – मानसा, वाचा, कर्मण किसी भी प्राणी को कभी भी, किसी प्रकार का दुःख न देना अहिंसा है। इसके अभ्यास प्रेम और भाई–चारे विकसित होता है। जो चित को निर्मल करता है। घृणा–द्वेष की भावना का बहिष्कार करता है। वह अहिंसा के अंतर्गत आता है। इसके माध्यम से चित की निर्मलता और भावनाओं को परिकृष्त किया जाता है।[3]

2. सत्य :–

'असतो मा सद्गमय' असत्य को हटाकर सत्य की ओर अग्रसर होने की कामना मनुष्य को हमेशा करनी चाहिए। सत्य का अर्थ है झूठ न बोलना। जो कुछ है वह वास्तविक हो उसे प्रकट करना।[4]

चरणदास कहते हैं – सत्य को घुमा–फिराकर न बोले, सोच–समझकर अपने विचार प्रस्तुत करें। कहीं मैं झूठ तो नहीं बोल रहा।

आचार्य श्रीराम कहते हैं – सत्य अत्यंत महत्वपूर्ण, क्योंकि सत्य पर ही अन्य यम तथा नियमों का पालन निर्भर है। महात्मा गांधी ने सत्य पर विशेष बल दिया और सत्य को ही अपनी कार्य–पद्धति का आधार बनाया।[5]

उनके अनुसार सत्याग्रही व्यक्ति का समाज सत्याग्रह के माध्यम से सर्वोदय के पथ पर अग्रसर हो सकता है। सत्य के माध्यम से हम अपनी वाणी को संयमित और पवित्र बना सकते हैं।

महर्षि पंतजलि कहते हैं :– मन, वाणी और शरीर से सत्य आचरण के परिपक्व हो जाने पर सत्यनिष्ठ व्यक्ति के मुख से निकले हुए सभी वचन फलीभूत होते हैं।

3. **अस्तेय :–** मन, वाणी और शरीर से चोरी का परित्याग करके उत्तम कार्यों में तन, मन, धन से सहायता करना, अस्तेय है। केवल चोरी को छोड़ देना ही अस्तेय नहीं है।[(6)]

महर्षि व्यास :– शास्त्र की आज्ञा के विरूद्ध किसी अन्य के पदार्थ को ग्रहण करना तो स्तेय रूप है। अर्थात् चोरी है। उसको पूर्ण रूप से त्याग देना, मन में उसकी इच्छा भी न रखना अस्तेय है।[(7)]

महर्षि पंतजलि :– अस्तेय में पूर्ण प्रतिष्ठा हो जाने पर संसार के सभी ऐश्वर्य उसे स्वयं ही उपलब्ध हो जाते है।

आचार्य श्रीराम शर्मा – अस्तेय का तात्पर्य है – दूसरे के धन, वस्तु या विचारों का अपने हित में प्रयोग की प्रवृति से विरल होना। अस्तेय से व्यक्तिगत चितशुद्धि के अतिरिक्त व्यापक सामाजिक तनाव भी कम होता है। अर्थात् दूसरों के वैभव–ऐश्वर्य को देखकर हमारे अंदर ईर्ष्या, द्वेष अथवा लोभ का भाव न आना। अस्तेय के माध्यम से हम इस प्रकार की मानसिक दुर्भावनाओं से दूर रहते हैं।

4. **ब्रह्मचर्य :–** ब्रह्मचर्य का अर्थ है – ब्रह्म जैसी चर्या ब्रह्म के अधिकतम समीप रहना, ईश्वर की भांति जीवन ईश्वरीय जीवन। पूर्ण जितेन्द्रिय को ही हम वास्तविक ब्रह्मचारी कह सकते हैं।

भाष्यकार व्यास – ब्रह्मचर्य का लक्षण बताते हुए कहते हैं – गुप्तन्द्रिय का समय करना ही ब्रह्मचय्र है। शुक्र रक्षण करना। इसका प्रमुख कर्म है। वेदों को पढ़ना ईश्वरोपासना करना और वीर्य की रक्षा करना ब्रह्मचर्य है।

5. **अपरिग्रह :–** परिग्रह का अर्थ है – आवश्यकता से अधिक साधनों का संग्रह करना, इसके विपरीत जीवन जीने के लिए न्यूनतम साधनों को प्राप्त कर संतुष्ट

रहना तथा ईश्वर आराधना व साधना को लक्ष्य बनाना अपरिग्रह है। आचार्य रजनीश ने कहा – बिना किसी मालकियत के संसार का मालिक होना।

भाष्यकार व्यास ने इसका लक्षण बताते हुए कहा है – ज्ञानेन्द्रियों और कर्मेन्द्रियों के विषय रूप भोगों में, उनके भोगने में या संग्रह करने में, उनकी रक्षा करने में उनको स्थिर रखने में तथा उनकी क्षीणता में होने वाले मानसिक कष्टों और दुःखों को देखकर उन पर चिंतन करते हुए, इन्हें मन, वचन और कर्म से स्वीकार न करना अपरिग्रह कहलाता है।

महर्षि व्यास जी कहते हैं – मैं कौन हूँ? मैं कैसा हूँ? कैसे हुआ है? हम कौन होंगे? कैसे होंगे? इस प्रकार इस योगी को पूर्वकाल, परकाल, मध्यकाल की जन्म विषयक जिज्ञासा उत्पन्न हो जाती है।

आचार्य श्रीराम शर्मा जी कहते हैं – ब्रह्मचर्य स्वधर्म से विरत न होने का बोधक है। यह केवल मात्र मैथुन कर्म से विरत होना नहीं है, परन्तु मैथुन कर्म से विरत रहना ब्रह्मचर्य का एक महत्वपूर्ण अंग अवश्य है, क्योंकि यह साधक के मन व शरीर की शुद्धि के साथ–साथ उसे सामाजिक तथा शारीरिक दृष्टि से सबल रखता है, ताकि साधना के पथ पर वह कुशलता से अग्रसर हो सके।

आचार्य श्रीराम शर्मा जी कहते हैं कि अपने स्वार्थ के लिए ममतापूर्वक धन, सम्पति और भोग सामग्री का संचय करना 'परिग्रह' है इसके अभाव का नाम 'अपरिग्रह' है।

समाज की प्रगति के लिए एक बात यह भी आवश्यक है कि सभी मनुष्यों को कार्य करके उचित रीति से जीवन निर्वाह कर सकने का मौका दिया जाए। मनुष्य अपनी सम्पति पर अधिकार रखकर उसका उपयोग करता रहे, इसमें कोई ऐतराज की बात नहीं पर उसे यह भी ख्याल रखना चाहिए कि दूसरे व्यक्तियों को भी सामाजिक सम्पति में उचित भाग मिल सके और वे भी निर्वाह कर सकें।

महर्षि पतंजलि कहते हैं :– शौच संतोष तथा स्वाध्याय ईश्वरप्राणिधान 5 नियम बताएं है।

1. **शौच :–** शौच का अर्थ है – शुद्ध या पवित्र होना। शौच दो प्रकार की मानी गई – (क) बाह्य शौच (ख) आन्तरिक शौच, शरीर, वस्त्र, स्थान, भोजन आदि स्वच्छ रखना ही बाह्य शौच है। आन्तरिक शोच में व्यक्ति के विचार,

व्यवहार, संस्कार आदि आते हैं। शौच अर्थात पवित्रता का पालन शारीरिक, वाचिक और मानसिक स्तर ठीक प्रकार से करना चाहिए।

आचार्य श्रीराम शर्मा जी कहते – शौच का तात्पर्य है – जीवन के शारीरिक, मानसिक क्रिया–कलाप के प्रत्येक क्षेत्र में शुद्धता का अभ्यास शौच है। वेद में भी पवित्र होने की प्रार्थना की गई है – विद्वान जन मुझे ज्ञान–विज्ञान से प्रतिपूर्वक पवित्र करें, मेरी बुद्धि को पवित्र करें।

2. **संतोष** :– अपने आपके पास जो साधन है उन्हीं से संतुष्ट होना। उससे अधिक की इच्छा न करना ही संतोष है।

महर्षि पतंजलि कहते हैं – संपूर्ण संतोष का पालन करने वाले मानव को समस्त सांसारिक सुखों से उत्तम सुख की प्राप्ति होती है। फिर उसे जीवन में कोई भी कष्ट न घेरता।

महर्षि व्यास कहते हैं – लोक में जो काम से सुख है जो महान स्वर्ग सुख है, ये दोनों सुख तृष्णा के क्षय से होने वाले सुख का सोलहवाँ भाग भी नहीं हो सकता।

स्वामी हरिहरानंद कहते हैं – किसी इष्ट पदार्थ के प्राप्त होने से जो तुष्ट निश्चित भाव होता है। उसकी भावना करके संतोष प्राप्त करना पड़ता है।

आचार्य श्रीराम शर्मा कहते हैं – संतोष से जिससे श्रेष्ठ अन्य कोई सुख नहीं है, ऐसे उस सर्वश्रेष्ठ सुख का लाभ प्राप्त होता है।[8]

3. **तप** :– तप का सामान्य अर्थ है – स्वयं को गलाना, जिसमें शरीर, प्राण, इन्द्रियों और मन को उचित रीति–रिवाज से वशीकृत किया जाता है।

महाभारत में जब महाराज युधिष्ठिर से यक्ष प्रश्न पूछते हैं कि :– ''तपस की लक्षणम्''

अर्थात् हे यक्ष! कर्तव्य पालन में जो बाधाएं आती है, उनको सहन करते हुए निरन्तर अपने धर्म का परिपालन करना जप है।

महर्षि व्यास कहते हैं – तप द्वन्द्व सहन करने की क्रिया।

अर्थात् कष्ट सहना, गर्मी–ठंडी आदि द्वन्द्वों को सहना। इससे समस्त शक्तियां सतेज होती है। तप से समस्त सिद्धि की प्राप्ति होती है।(9)

4. **स्वाध्याय :–** स्वाध्याय का अर्थ है – स्व + अध्ययन। अर्थात् स्वयं को जानना। 'सु + अध्ययन स्वाध्याय' उत्तम शास्त्रों का अध्ययन स्वाध्याय कहलाता है।

   महर्षि व्यास जी कहते हैं कि – स्वाध्याय के माध्यम से हमारे ज्ञान का विस्तार होता है जिससे कि हमारी बोध क्षमता का परिष्कार एवं विकास होता है।

5. **ईश्वर प्राणिध्यान :–** यह दो शब्दों के मेल से बना ईश्वर + प्राणिधान, परमात्मा प्राणिधान का अर्थ है – धारण करना, स्थापित करना, ईश्वर प्राणिधान अर्थात ईश्वर को धारण करना, ईश्वर को स्थापित करना।

   प्राणिपात का अर्थ है कि विनम्र भाव से ईश्वर से प्रार्थना करना।

   महर्षि व्यास के अनुसार – ईश्वर प्राणिधान सबसे महत्वपूर्ण अंग है। यह अन्य अंगों की अपेक्षा मात्र इसके द्वारा ही समाधि सिद्ध हो सकती है।

निष्कर्ष – अतः यम नियम से व्यक्तिगत दुख–शारीरिक, मानसिक व आध्यात्मिक दुखों का हल तो होगा। साथ ही सामाजिक समस्याओं का हल भी होगा।

वैसे तो विश्व में शान्ति कैसे स्थापित हो, इस पर बहुत से विचार प्रस्तुत किये जाते हैं। अगर हम अपने पूर्व को देखे तो शान्ति की स्थापना महर्षि पतंजलि द्वारा रचित योगसूत्र में निहित है। योग का अर्थ ही जोड़ना होता है। योग धर्म, अध्यात्म, मानवता पर खरा उतरता है। वर्तमान सामाजिक समस्याओं का समाधान योग में निहित है। अतः यम व नियम को व्यवहार में लाने से व्यक्ति और समाज दोनों का निर्माण होता है। इनको व्यवहार में न लाने से व्यक्ति और समाज दोनों का चरित्र अशुद्ध हो जाता है। इसलिए चरित्र व आचरण की शुद्धि के लिए और परम आनन्द की प्राप्ति के लिए हमेशा श्रद्धापूर्वक व्यवहार करना चाहिए।